पुराणवेद–परिशीलन

पं. अनंत शर्मा

स्वनाम धन्य वेद मनीषियों ने मुझे आहूत करने हेतु यदि 'पुराण वेद परिशीलन' विषय दिया है तो इस उदारता के लिए मैं कृतज्ञ हूँ, किन्तु यह कहना चाहूंगा कि इसके लिए 'पुराण–परिशीलन' शीर्षक ही उचित था। इतिहास और पुराण से वेद का उपबृंहण मानने की अति प्राचीन परम्परा इस देश में रही है जो भगवान् व्यास द्वारा महाभारत आदिपर्व में गृहीत अतीव प्राथित स्मृति वाक्य से व्यक्त है कि –

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृहेत्।
बिभेत्यल्यसुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्याति।।

इस आदन वचन से स्पष्ट है कि इतिहास और पुराण वेद के समयबृहण के लिए हैं न कि ये वेद ही हैं।

इधर पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकत्र 'पुराण वेद' जैसा शब्द भी व्यवहार में लिया गया मिलता है। ये दोनों प्रकार के ग्रन्थ 'ब्रह्म' को लेकर ही चलते है। विश्व मूल ब्रह्म है, विश्व ब्रह्म है ब्रह्म के स्वरुप की परिचायक विद्याबल तथा उसको बोधक विशिष्ट ग्रन्थ राशि भी ब्रह्म है। अतः इन सबकी व्याख्या में प्रसक्त पुराण को औपचारिक रुप से वेद मानना न्याय ही है। ऐसी स्थिति में भी 'पुराण वेद' कहना उपयुक्त नहीं हैं। व्याख्येय के हित में ही व्याख्या की प्रवृत्ति है, व्याख्येय में व्याख्या की भक्ति होने से व्याख्या बिना व्याख्येय में गति सम्भव नहीं है। स्पष्ट है कि छः अङ्ग वेद की व्याख्या ही हैं। इन व्याख्या तव्य विषयों के उपकारक शास्त्र को जब हम 'अङ्ग' जैसा नाम देते हैं तो अङ्गाङ्गी की एक व्यक्तिता स्पष्ट है, अङ्गी अङ्गों की समष्टि से भिन्न कहाँ देखा जा सकता है। अङ्गाङ्गी का समवाय सम्बन्ध सर्वसाधारण तक ज्ञात है। मान्य है। इसी समवायिता को लेकर ही औत्तराधर्य भाव से अगों को दो रुपों में देखने की आवश्यकता पड़ी है वे है – अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग हाथ अन्तस्थ हैं। चिमटी, चिमटा, संडासी आदि से लेकर क्रेन तक सभी बहिरङ्ग है। यदि इस दृष्टि से विचार करने हैं तो पुराण और ब्राह्मण अतरङ्ग है तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्तादि बहिरङ्ग है।

विषय आत्मा है, विषय बोध कराने वाले वाक्य शरीर हैं। शिक्षादि इस शरीर रुप वाक्य का विचार करते हैं। शरीर में विद्यमान आत्मा उनके विचारों का विषय नहीं है, यह बोध कराने वाली ग्रन्थ

राशि पुराण और ब्राह्मण ही है। अतः इस ग्रन्थराशि को अन्तरङ्ग कहना उचित है। फलतः 'पुराण वेद' कहना उचित नहीं ही है।

आपाततः यह समाधान उचित लगता है किन्तु विचार कर देखते हैं तो औचित्य पर कुछ प्रश्न खड़े हो जाते हैं। वेद अनादि अपौरुषेय हैं, ये पुराण और ब्राह्मण सादि तथा पौरुषेय हैं। इनकी आवश्यकता तथा महत्ता है तथापि इन्हें वेद कहना उचित नहीं है। पौरुषेयता के कारण।

शताब्दियों से वेद एवं पुराण को लेकर यह विमर्श चल रहा है। चिरकाल से चले आने से पक्ष-विपक्ष जैसे दो सम्प्रदाय भी बन गये हैं। उनकी कट्टरता भी बढती जाती है। सम्भवतः परिशीलन में इस दृष्टि को सामने रख कर वेद और पुराण के यथार्थ्य पर विचार करने की अपेक्षा से ही यह शीर्षक दिया गया है। प्रचुर समय साध्य इस विषय के यथासम्भव अपनी समय सीमा में रखते हुए ही समाधान का यत्न करुंगा। इस सुअवसरदान के लिए मैं अकादमी के मनीषियों का तथा निदेशक डॉ. रेणुका राठौड़ का कृतज्ञ हूँ।

अभी मैने कहा है कि पुराण और ब्राह्मण ग्रन्थों में 'पुराणवेद' जैसा नाम प्रयुक्त हुआ है। मैं ब्राह्मण के उद्धटण द्वारा अपने कथन की पुष्टि में आपके सामने कुछ साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा हूँ। पुराण के उद्धटण बाद में प्रस्तुत करूंगा।

शतपथ ब्राह्मण के तेरहवें काण्ड में 15 कण्डिकाओं का 'पारिप्लवाख्यान ब्राह्मण' अश्वमेध यज्ञ के प्रसङ्ग में दस दिन का आख्यान कहने की विधि बताता है। यह आख्यान प्रतिदिन चलता हैं इस प्रकार दशाह की 36 आवृत्तियाँ होती है। अश्वमेध की दीक्षा के दिवस अश्व को छोड़ दिया जाता है वह यथाकाम विचरण करता हुआ 36 दिन पूरे होने पर लौट आता है। इस प्रक्रिया का नाम 'पारिपल्वाख्यान' है। इसमें प्रतिदिन एक वेद सुनाया जाता है, दस दिन तक सुनाये जाने वाले 10 वेदों का क्रम है। सुनने वाली प्रजा का वर्ग प्रत्येक वेद के साथ निश्चित है। वर्ष में एक वेद का उपदेश 36 बार प्रत्येक 11 वें क्रम पर हो जाता है। वहाँ का क्रम यह है 1. ऋग्वेद 2. यजुर्वद 3. अथर्ववेद 4. अङ्गिरावेद 5. सर्पविद्यावेद 6. देवजन विद्यावेद 7. मायावेद 8. इतिहास वेद 9. पुराण वेद तथा 10. सामवेद।

आरम्भ ऋग्वेद से है तथा अन्त सामवेद पर है, प्रत्येक के साथ वेद शब्द का योग है। फलतः उपक्रमोपसंहार के ऐक्य से मध्य के सभी का वेदत्व स्पष्ट है।

इस ब्राह्मण (13.4.3) की तीसरी कण्डिका से 14 वीं कण्डिका तक प्रत्येक वेद के विषय में विधि का उपदेश है। यहाँ भृक्, इतिहास, पुराण की कण्डिकाओं का पाठ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

1. मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह। तस्य मनुष्या विशः। स इम आसत इति। अश्रोत्रिया गृहमेधिन उपसमेता भवन्ति। तान् उपदिशति ऋचः वेदः सोऽयमिति। ऋचां सूक्तं व्याचक्षाण इवानुद्रवेत्। - 131

यजमान और अध्वर्यु आदि अपने अपने स्थान पर बैठे है। आख्यान सुनने के प्रमुख श्रोताओं के रुप में आये लोग अपने राजाओं के साथ बैठे हैं। शेष अन्य लोग भी यथास्थान अवस्थित है। अब होता कहता है - मनुवैवस्वत् राजा है, मनुष्य उसकी प्रजा है। वे सब ये बैठे हैं। अश्रोत्रिय गृहस्थ एकत्र हैं। उन सबको उपदेश दिया जा रहा है, यह ऋचा रुप वेद है। यह कहकर ऋचाओं के एक सूक्त को सुस्पष्ट व्याख्या करता हुआ आगे बढ़ रहा है। ऐसा अनुक्रम करना चाहिये। यह प्रथम दशाह का प्रथम दिन है। ऋग्वेद के उपदेशक का। अब यजुः, अथर्व आदि वेद का क्रमशः 7 दिन तक उपदेश करते हुए अष्टम दिन इतिहास तथा नवम् दिन पुराण के कथन की विधि है।

2. अथाष्टमेऽहन्नेवमेव। एतास्विष्टिषु संस्थितासु। एषैवानृत् अध्वर्यो इति। हवैहोतः इत्येवाध्वर्युः। 'मत्स्यः साम्मदो राजा' इत्याह। तस्योदकेचरा विशः। त इम आसन इति। मत्स्याश्च मत्स्यहनश्चोप समेता भवन्ति। तानपुदिशति। इतिहासो वेदः सोऽयमिति। कश्चिदितिहासमाचक्षीता एवमेवाध्वर्युः संप्रेष्यति न प्रकमान् जुहोति। - 121

3. अथ नवमेऽहन्नेवमेव। तार्यो वैपश्यतो राजा इत्याह। तस्य वयांसि विशः। तानीमान्यासत इति। वयांसि च वायोविधिकाश्चोपसमेता भवन्ति। तानुपदिशति। पुराण वेदः सोऽयमिति। किञ्चित् पुराण माचक्षीत। -131

जैसा कथन ऋग्वेद विषयक है, ठीक वैसा ही इन दोनों इतिहास और पुराण के विषय में है। 'ऋचः वेदः' में सामान्याधिकरण है। वहाँ 'इतिहासः वेदः' पुराणं वेदः में है। यह भी ध्यातव्य है कि यह 'पुराणम्' यह विशेषण न होकर संज्ञापद है। अतः वेद अनुसार इसमें विशेष्य निष्ठ पुल्लिङ्गता नहीं है। ऐसा ही ऋचः (स्त्रीलिङ्ग बहुवचन) के साथ वेदः पुराण एकवचन है।

यहाँ न कोई संशय है न कोई अस्पष्टा तथापि शास्त्र की बन्धुता के उदाहरण रुप में 15 वी कण्डिका के उपसंहार वाक्य का कुश अंश यहाँ प्रस्तुत है :

एतत् पारिप्लवं सर्वाणि राज्यान्याचष्टे। सर्वाविशः। सर्वान् वेदान्। सर्वान् देवान् सर्वाणि मूलानि। सर्वेषां हवैस एतेषां राज्यानां सायुज्यं सलोकतां मश्नुते। सर्वासां विशा मैश्वर्य माधिपत्यं गच्छति। सर्वान् वेदानवरुन्धे। सर्वान् देवान् प्रीत्वा। सर्वषु भूतेषु अन्ततः प्रतितिष्ठति। यस्यैवंविद् एतद्धोता परिप्लवमाख्यान माचष्टे - 131

यह है पारिप्लव आख्यान। यहाँ होता सब राज्यों को, सभी प्रजाओं को, सब वेदों को सब देवों को, सब भूतों को आख्यान का विषय बनाता हैं। इस यज्ञ का यजमान, राजा इन सभी राज्यों के समान योगभाव तथा समान लोकता के भाव को भोगता है। वह सभी - प्रकार की प्रजाओं के पूर्ण

स्वामित्व को तथा निर्बाध आधिपत्य को प्राप्त करता है। ज्ञान विज्ञान सहित सभी वेदों पर अधिकार पा लेता है। वह सब देवों को अनुकूलतापूर्वक प्रसन्न कर चुका होता है। सभी मूलों के अन्तस्थल में प्रतिष्ठा प्राप्त करता हैं। जिस राजा का ऐसे ज्ञान वाला ऐसा पारिप्लवाव्याख्यान कहने वाला होता है।

एक एक वेद के साध्य सभी कार्यों का पृथक्-पृथक् उल्लेख कर बताये गये लाभ यहाँ गिनाये गये हैं। इस दृष्टि से वेद वेद ही प्रमाणित होते हैं। औपचारिक वेद नहीं और न वैसे वेद जहाँ भक्ति विशेष से महत्व देने मात्र के लिए वेद कह दिया गया हो।

विभिन्न प्रजाएं

शतपथ के इस ब्राह्मण में मनुष्य, पितरः, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस, असुर, मत्स्य, वयस् तथा देव नाम की दस प्रजाएँ बतायी गयी हैं। इसी भाँति रामायण में ऋक्ष, वानर वर्णित हैं। इन सब के मध्य पारस्परिक विवाह आदि सम्बन्ध भी हैं। भगवान् राम के पूर्वज महाराज सगर की एक पत्नी सुमति अरिष्टनेमि (कश्यप) की पुत्री, सुपर्ण (गरुड़) की बहिन बतायी गयी है। प्राचीन परम्परा के आधार पर काव्यकार महाकवि काविदास बताते हैं कि राम के ज्येष्ठ पुत्र कुश की पत्नी कुमुवती नागराज कुमुद् की बहिन है। यह तक्षक की पाँचवी पीढ़ी का नाग था। कुमुवती का पुत्र अतिथि था। (रघु. 16.74-85.17.1) पुरुवंश में उत्पन्न ऋक्ष की पत्नी ज्वाला नागराज तक्षक की पुत्री थी। इनके वंशवर्धक पुत्र मतिनार हुआ। (आदि प. 95.15) इसी वंश में उत्पन्न एक दुसरे ऋक्ष के संवरण नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इस संवरण का विवाह तपती से हुआ जो सूर्यदेव की पुत्री थी। इनके पुत्र 'कुरु' के नाम से ही पौटववंश कौरव नाम से भी प्रसिद्ध हुआ। (आदि 94/48) भीम की पत्नी हिडिम्बा राक्षसी, अर्जुन की पत्नी उलूपी नाग थी। छन्दासूत्र के प्रवक्ता महर्षि पिङ्गल नाग थे। ये पाणिनी के अनुज थे फलस्वरुप पाणिनी भी नाग थे। भाष्यकार पतञ्जली भी नाग थे। कश्मीर में दुर्लभ वर्धन प्रज्ञादित्य का शासन कलिसंवत् 3677 से 3932 कलिसंवत् तक 17 पीढ़ी का रहा। यह दुर्लभ वर्धन नाग था। अतः 255 वर्षों का यह नागशासन था। दुर्लभवर्धन सम्राट हर्षवर्धन का समकालीन था। जाम्बवान् ऋक्ष था, उसकी कन्या जाम्बवंती रोहिणी से भगवान् श्री कृष्ण का विवाह हुआ था, जिनका पुत्र साम्ब था।

पुराण-इतिहासों में इन्हें मिथक मान लिया जाता है। दूसरी ओर इन नामों से कई विद्वान् इन्हें अनार्य मान लेते हैं। यह सभी अधूरे अध्ययन का परिणाम हैं। पुराण इन सब का यथार्थ परिचय देते है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि ब्राह्मण और पुराण एक दूसरे को प्रतिष्ठापित करते हुए असद् व्याख्याओं में प्रस्तुत कर रहें हैं। मन्त्रदृष्टा ऋषियों में भी इनको गिनाया गया है। यहाँ ऋग्वेद के कुछ ऋषियों के नाम आपके समक्ष विवेदित हैं।

– आठ मन्त्रों के सूक्त में क्रमशः 1-2, 3-4, 5-6, 6-7 तथा 7-8 मन्त्रों के दृष्टा

– अभी बताये गये 18 नामों का सम्बन्ध ऋग्वेद से हैं। फलतः एकीय नहीं है तथापि और स्पष्टता तथा दृढ़ता के लिए।

इन नामों से स्पष्ट है कि ब्राह्मण एवं पुराण वेद प्रतिपादित विषय को प्रतिपादित कर रहे हैं। अतः ये विषय वेद में अनाख्यात अथवा वेद निरुद्ध नहीं हैं।

शतपथ यजुर्वेद का ब्राह्मण है, अतः इसे वेद के एकदेशीय विचार के रुप में रुप में नहीं देखा जाना चाहिये। गोपथ ब्राह्मण के भी एतद् विषयक विचार आपके सम्मुख रख रहा हूँ।

गोपथ – अनेक वेद

वेद सब कुछ हैं तथापि वेद की चरितार्थता यज्ञ में हैं। यज्ञ प्रक्रिया में विनियुक्त वेद वेद न रहकर यज्ञ हो जाता है। इस तथ्य को गोपथ ब्राह्मण इस रुप में व्यक्त कर रहा है –

तद् याः प्राच्यो नद्यो वहन्ति याश्च दक्षिणाच्यो याश्च प्रतिच्यो याश्चोदीच्यः ताः सर्वाः पृथङ्नामधेया इत्याचक्षते। तासां समुद्रमभिपद्यमानानां छिद्यतेनामधेयं समुद्र इत्याचक्षते। एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः स ब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सेतिहासाः सान्वाख्यानाः सपुराणाः सस्वराः स निरुक्ताः सानुशासनाः सानुमार्जनाः एवाकोवाक्याः। तेषां यज्ञमभिपद्यमानानां छिखले नामधेयं यज्ञ इत्येवाचक्षते। (पूर्वभाग 2/10)

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में बहने वाली सभी (छोटी, बड़ी) नदियों के पृथक् पृथक् नाम हैं (जो हमारे व्यवहारों के प्रशस्त माध्यम है तथा उनके पृथक् पृथक् व्यक्तित्व के परिचायक है)। जब ये नदियाँ समुद्र मे चली जाती है तो इनके नाम कट जाते हैं (कोई भी उन पृथक् नामों से नहीं पहिचानता है)। सभी समुद्र ही कहते हैं। ठीक उसी प्रकार कल्प, रहस्य, ब्राह्मण, उपनिषत्, इतिहास, अन्वाख्यान, पुराण, स्वर, संस्कार, निरुक्त, अनुशासन, अनुमार्जन और वाकोवाक्य सहित निर्मित यह वेद है। ये जन यज्ञ को प्राप्त हो जाते है तो इनका वेदनाम छूट जाता है। यह केवल 'यज्ञ' ही कहलाते हैं। हमारे में यहीं वेद और यज्ञ पुरुष नाम ले लेता है, यज्ञ के परिणाम के रुप में। यह दो बातें विशेष रुप से ध्यातव्य है एवम् निर्मिता इसे सर्ववेदाः (इसी भाँति निर्मित ये वेद) दिन रात अध्ययन अध्यापन के विषय तथा यज्ञ क्रिया कलाप के साधक वेद हमारे प्रत्यक्ष हैं। अतः 'इमे' ये प्रत्यक्ष विद्यमान है कहा गया है। साथ ही निर्मित पद का प्रयोग भी है जिसका अर्थ रचित अर्थात् बना (ये) गया (ये) हैं। तात्पर्य स्पष्ट है कि बनाये गये ये सभी वेद। दूसरा भाग वेदाः के विशेषणों का हैं जो कल्प से प्रारम्भ कर वाकोवाक्य तक 13 नामों से वेद की युक्तता को बताता है। यहाँ सभी के साथ सहअर्थ बोधक स शब्द समास प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है, फलस्वरुप 'कल्प सहित' आदि जैसा सभी का अर्थ है। अब पुरा अर्थ है 'कल्पादि से युक्त बनाये गये ये सभी वेद' हैं।

इतने स्पष्ट कथन के होते हुए यह अर्थ लेना युक्ति-युक्त नहीं होगा कि 'इमे' इन सबको न

बताकर केवल चार ऋक् आदि वेदों का ही बोधक है। लगता है कि कल्प जैसे कर्मकाण्ड विधियों को बताने वाला शास्त्र है तथा वेद से पृथक् है। उसी भाँति अन्य शास्त्र भी है। इस मान्यता के आधार पर कल्पादि को वेद स्वीकृत न करने की मुख पर होकर ऐसा आग्रह कर सकती है। अतः 'सस्वराः ससंस्काराः सवाको वाक्याः' पदों पर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि शब्द के उच्चारण के धर्म हैं। अतः बाद में आरोपित न होकर धर्मों-धर्म के सम्बन्ध की भाँति नित्य हैं। इसी भाव को लिपि में चिन्ह विशेषों द्वारा बताया जाता हैं कि इस पद का ऐसा उच्चारण है। शिष्ट सम्मत शब्द को ही शब्द माना जाता है। उस स्वरुप से तनिक भी विकल 'शब्द का ढाँचा' शब्द न होकर 'अपशब्द' है। इस आधार पर व्याकरण की प्रक्रिया, प्रवृत्ति, प्रत्यय आदि विभिन्न योगों से उस शब्द की संस्कार-सम्मतता को बताने का यत्न करती हैं। व्याकरण की इस प्रक्रिया से शब्द साधुत्व का ज्ञान होना ही संस्कार हैं, ऐसे संस्कार सम्पन्न शब्द तथा पद का रुप 'संस्कार' है। अर्थात् वस्तुतः शब्द है, वेद मन्त्रों के समस्त शब्द शब्द ही है। उनमें अशिष्ट अथवा अपभ्रष्ट कोई शब्द नहीं है। अतः वेद का विशेषण 'संसस्कार' है। स्पष्ट है कि यह कोई पृथक् वस्तु नहीं है। ऐसा ही शब्द वाकोवाक्य है जो वाक्य की शैली विशेषण सूचक है, अतः वाक्य का सहज रुप है आरोपित धर्म नहीं।

रहस्य से पुराण तक के नाम विषयों के हैं। मन्त्र वाक्य हैं जो वक्ता के अभीष्ट विचार अथवा भाव को अभिव्यक्त करने का निर्विकल्प माध्यम हैं।

अतः इसका अस्तित्व वाक्य रचना के पूर्व का हैं। वस्तुतः वाक्य रचना होती ही इसके प्रकाशन हेतु अतः मे विषय होने से ये ही वेद हैं। मन्त्र-वाक्य तो इनको प्रकाशित करता हैं। अतः यह स्वीकारने में कोई आपत्ति नहीं होना चाहिये कि कल्प से वाकोवाक्य तक सब वेद ही हैं।

ऋक्, यजुः, सामः, अथर्व को बाहर वेद का कोई नाम सम्भव ही नहीं है। यह सोचना भी ठीक नहीं है। यहीं ब्राह्मण ऐसे 5 नाम इन चार प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त देता है। देखिए -

स दिशोऽन्वैक्षत - प्राची दक्षिणां प्रतीची मुदीची ध्रुवा मूर्खामिति। ता स्तत्रैवाभ्य आम्यत्-अभ्यतपत् समतपत्। श्रान्ताभ्य स्तप्ताभ्यः सन्तप्ताभ्याः पञ्च वेदान् निरमिमत-सर्पवेदं पिशाचवेद मसुरवेद मितिहासवेदं पुराणवेदमिति।

स खलु प्राच्या एव दिशः सर्पवेदं निरभिमत, दक्षिणास्याः पिशाचवेदं, प्रतीच्या असुरवेद मुदीच्या इतिहासवेदं ध्रुवायाश्चोर्ध्वायाश्च पुराणवेदम्।

सतान् पञ्चवेदानभ्य ग्राम्यत् अभ्यतयत् समतयत्। तेभ्यः आन्तेभ्यः सप्तेभ्यः सन्तप्तेभ्यः पञ्च महाव्याहृति निरमिमत - वृधत् करद् गुहत् महत् तत् इति। वृधद् इति सर्पवेदात्, करद् इति पिशाच-वेदात्, गुहद् इति असुर वेदात्, महद् इति इतिहासवेदात् तद् इति पुराण वेदात्।

स य इच्छेत् 'सर्वेः एलैः पञ्चमिः वेदैः कुर्वीय इति, एताभिः एव तं महाकाव्याहृतिभिः कुर्वीत्, सर्वैः ह वा अस्य पञ्चभिः वेदैः कृतं भवतिः। य एवं वेद यः च एवं विद्वान् एवम् एताभि महाव्याहृतिभिः कुरुते। (गो.पू. 1-10)

गोपथ ब्राह्मण (पूर्वभाग, प्रपाठक एक) की काण्डिका है। इसमें पूर्व, दक्षिण, पूश्चिम, उत्तर एवं ऊर्ध्व तथा ध्रुवा दिशाओं से क्रमशः पाँच वेदों की उत्पत्ति बतायी गयी है। प्राची (पूर्व) से सर्पवेद की, दक्षिण से पिशाच वेद की, प्रतीची (पश्चिम) से असुरवेद की, उदीची (उत्तर) से इतिहास वेद की और ध्रुवा (पृथ्वी) ऊर्ध्वा (द्यौः) के योग से पुराणवेद की उत्पत्ति दर्शित है।

पुनः अभिश्रमण, अभितपन तथा सन्तपन रुप (शरीर, प्राण तथा मन की सम्भूय) प्रक्रिया से इन पाँच वेदों की व्याहृतियों को क्रमशः उत्पन्न किया। इनमें वृधत् का सर्पवेद, करत् का पिशाचवेद से, गृहत् का असुरवेद से, महत् का इतिहास वेद से, तत् का पुराण वेद से उद्भव हैं। वेदों से करूं तो वह इन वृधत् आदि पाँचों महाव्याहृतियों से ही अभीष्ट का सम्पादन करें। निश्चित उसका वह सम्पादन इन पाँचों वेदों से होगा जो यह जानते हुए इस सत्य का ज्ञान इन महाव्याहृतियों से करता है- 10

इससे पूर्व छठी से नवमी कण्डिका तक ऋग् आदि चार वेदों का उनकी भूः भुवः स्वः और जनत् महाव्याहृतियों का उद्भव बताया गया है जो पूर्णतः सर्वथा इसी प्रकार का है। अतः सर्पवेद आदि का वेदत्व ऋगादि के वेदत्व से तनिक भी विलक्षण नहीं है, यह इस कण्डिका से स्पष्ट है।
ब्राह्मणों के प्रवचन कर्ता ऋषि थे अतः इनके वचन पूर्णतः प्रमाण हैं। इस दृष्टि से गोपथ का यह वचन तथा इससे पूर्व में कथित एवमिमेवेदाः (गो.पू. 2/10) प्रामाणिक है।

महर्षि याज्ञवल्क्य तथा गोपथ ये दोनों वेदर्षि हैं। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिनी आदि 15 शाखाओं के विस्तारक याज्ञवल्क्य ही हैं। इसी भाँति अथर्ववेद के अनेक सूक्तों के ऋषि गोपथ है।

गोपथ तथा याज्ञवल्क्य की आप्तता

यद्यपि यह मैनें कहा है कि ये दोनों वेदर्षि है अतः इनके प्रोक्त ब्राह्मण की आप्तता में कोई संदेह नहीं होना चाहिये। किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेकत्र वेद व्याख्याताओं के बताये गये मत को असत् बता कर स्वमत की स्थापना करते हुए ऋषि गोपथ एवं याज्ञवल्क्य देखे जाते हैं। इसे देख कर इन लोगों को भी उसी श्रेणी में लेकर इन ग्रन्थों को अश्रद्धेय मानने की भूलकर सकता हैं। यह जाने बिना कि आज भी शतशः व्यक्ति वेदव्याख्या का दुस्साहस करते हैं तथा आर्षबुद्धि मनीषी उनकी व्याख्या को असत् बताकर समाधान जनक मत प्रस्तुत करते ही हैं। ऐसे लोगों को विश्वास करने का आधार प्रस्तुत करते हुए मैं अथर्ववेद के मन्त्र उद्धृत कर रहा हूं-

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविक्षितः।।

(अथर्व. 11.7.24)

यह अथर्ववेद के उच्छिष्ट सूक्त का मन्त्र हैं। इसमें उच्छिष्ट से ऋक्, साम, छन्द (अथर्व), पुराण तथा यजु नाम के 5 वेदों का उद्भव बताया गया है।

ऋचः स्त्रीलिङ्ग ऋच् शब्द का प्रथमा का बहुवचन है। इसी भाँति नपुंसकलिङ्ग सामन् और छन्दस् शब्दों के प्रथमा बहुवचन के पद सामानि तथा छन्दांसि है। नपुंसकलिङ्ग पुराण तथा यजुष् शब्दों के प्रथमा एकवचन का पद पुराणम् एवं तृतीया के एकवचन का पद यजुषा है। सह शब्द के साथ सम्बद्ध होने से 'यजुषा' में तृतीया विभक्ति है। दिव् शब्द के सप्तमी के एकवचन का पद दिवि है, अर्थ है द्युलोक में। दिविश्रित् शब्द के प्रथमा का बहुवचन रुप 'दिविश्रितः' है। यह सर्वे का विशेषण है। मन्त्र का अर्थ है -

ऋचाएँ, साम, छन्द (अथर्व), और पुराण यजु के साथ उच्छिष्ट से उत्पन्न हुए, द्युलोकाश्रित ये सभी वेद द्युलोक में वर्तमान हैं।

ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा यजुर्वद सभी के जाने माने वेद हैं। इनके मध्य में आया हुआ पुराण भी वेद ही है। यजु के साथ हुई उत्पत्ति का कथन इन सबके पौर्वापर्वक्रम का निवारक है, स्रोत एक ही है - उच्छिष्ट। मूलतः सभी का एक ही आश्रय है द्युलोक तथा स्थिति भी वहीं है अतः द्युलोक के सम्बन्ध से सभी समान रुप से देव भी है। तत्व भी है।

यहाँ आया हुआ पुराण शब्द नाम हैं, विशेषण नहीं। विशेषण के विभक्ति वचन सदैव वैशिष्य के अनुसार ही होते हैं। यहाँ ऋचः, सामानि, छन्दांसि तथा यजुषा के विभक्ति वचनों के साथ किसी एक से भी पुराण का सम्बन्ध सम्भव नहीं है। अतः यह एक ऋक् आदि की भाँति नाम है।

इस मन्त्र की पुष्टि में इसी ब्रह्मवेद के व्रात्यकाण्ड (15 वें) में पठित छः मन्त्रों को आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं -

स उत्तमां दिश मनुव्यचलत्।
तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन्। 8।
ऋचांच वै स साम्नां च यजुषां च ब्राह्मणश्च
प्रियं धाम भवति य एव वेद। 9।

वह व्रात्य उत्तम दिशा में चला (7), उसके अनुसरण में ऋचाएं, साम, यजुः और ब्रह्म (अथर्व) चले (8), ऋचाओं का, सामों का, यजुषों तथा ब्रह्म (अथर्ववेद) का निश्चित ही वह प्रिय धाम है जो

इस अनुभूति का धनी है (9), धाम का एक ही अर्थ नहीं है। तेज, स्थान, नाम तथा जन्म (निरुक्त 9/28) धाम के प्रमुख अर्थ हैं। अतः दो अर्थ अभीष्ट हैं (1) ऋग् आदि का तेज वह प्राप्त करता है। (2) वह ऋगादि का प्रिय स्थान होता है। ठीक ऐसे ही तीन मन्त्र इतिहास, पुराणादि से सम्बद्ध हैं -

स बृहती दिश मनुव्यचत्।
तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्। (11)
इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च
प्रियं धाम भवति य एवं वेद। (12)

बृहती दिशा में प्रस्थान करते हुए व्रात्य का अनुगमन, इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसीयों ने किया। इसका अर्थ समझने वाला इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसीयों का प्रिय स्थान होता है तथा उसका विज्ञान तेजस्वी होता जाता है।

भगवान मनु कहते है कि -

यथा यथा हि पुरुषः, शास्त्रसमधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति, विज्ञानं चास्य रोचते।। (4.20)

पुरुष जैसे जैसे परिशीलन से शास्त्रों की एकात्म प्राप्ति करता जाता है। वैसे वैसे ही उसका अनुभूति का भाव बढ़ता जाता है तथा वह विज्ञान चमकता जाता है। यही वास्तविक शास्त्रानुसंधान है।

प्रवृत्ति निमित्तक वेद भेद

वेद और वैदिकशास्त्र ब्राह्मण आदि के इन प्रमाणों के साक्ष्य में अनेक वेदों की सत्ता के स्वीकार में यद्यपि कोई विपत्ति नहीं है। शास्त्रीयश्रद्धा के धरातल पर तथापि जिज्ञासायें समाधान चाहती हैं कि इस स्थिति में त्रयी, वेदचतुष्टयी जैसे शब्दों के सनातन व्यवहार की क्या स्थिति होगी? क्या इन तीन से चार तथा चार से पाँच और पाँच से अनेकानेक वेदों का विकास माना जावे? यदि यह विकास है तो इसकी निष्ठा बहुत बड़ी संख्या में है अथवा संख्यातीतता में है? यदि ऐसा नहीं है तो त्रयी, चतुष्टयी, पञ्चतय जैसे शब्दों की क्या गति है?

यह जिज्ञासा उचित है। प्रवृत्ति निमित्त से वेद के अनेक रुप में अनेक विभाजन हैं। इसके बाह्यरुप से लेकर आन्तरिक रुप तक ये विभिन्न भेद हैं।

शास्त्र रुप में वेद एक है। इस शास्त्र को जब वाचिक रुप दिया जाता है तो ऋक्, यजुः और साम रुप तीन वाङ्मय भेद हो जाते हैं जो बाह्य कलेवर के निष्पादक रुप है। निष्पादक भगवान् व्यास के शिष्य महर्षि जैमिनि अपने मीमांसा प्रवचन में ऋगादि की परिभाषा देते हैं -

तेषा मृग् यत्रार्थवशेन पाद, व्यवस्था - 2.1.35

गीतिषु सामाख्या - 36

शेषे यजुः शब्दः - 37

अर्थानुकूल पाद व्यवस्थात्मक पद संघटना का नाम ऋक् है (35), साम आख्या अर्थात् नाम गीतियों के विषय में है (36), इन दोनों से शेषरुपों में यजुः नाम की प्रवृत्ति है (37), सामान्यतया रचना के प्रकार की दृष्टि से तीन अवयव सम्भव हैं - (1) ऋक् = पद्य, (2) गीति = गान रुप, तथा (3) यजुः = गद्य। इन तीन अवयवों वाली वाक् समष्टि का नाम त्रयी है। इस प्रकार का कोई चतुर्थ रचना प्रकार सम्भव ही नहीं है।

ऋत्विक कर्म अन्य वेद विभाग

वेद की प्रवृत्ति यज्ञ के लिए है। भगवान् मनु कहते हैं -

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।

दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थम् ऋग्यजुःसाम लक्षणम्।।

ऋक्, यजुः और साम स्वरुप सनातन व्यवयवात्मक (ब्रह्म = वेद) का यज्ञसिद्धि के लिए प्रजापति ने अग्नि, वायु और रवि से दोहन किया।

यज्ञ के लिए चार ऋत्विक् अपेक्षित हैं। उनके नाम होता, अर्ध्वयु, उद्गाता तथा ब्रह्मा हैं। होतृकर्म के लिए अपेक्षित मन्त्रवर्ग का नाम ऋक् है। अर्ध्वयु के कर्म के साधक मन्त्र समुदाय का नाम यजुः है। उद्गाता द्वारा गायी जाने वाली गीतियों का नाम साम है। ये गीतियाँ ऋचाओं पर गायी जाती है। तीन ऋचाओं का एक साम होता है अतः ये ऋचाएँ सामयोनि कहलाती है। इनका ग्रन्थ उपचार से साम संहिता कहलाता है। इन तीनों ऋत्विजों के कार्यों का द्रष्टा ऋत्विज् ब्रह्मा है अतः उसका सम्बन्ध तीनों प्रकार के मन्त्रों से तो है ही साथ ही यज्ञ की किसी प्रकार की कोई क्षति न हो, हो तो बचाने के लिए नियत मन्त्र अथर्व प्राकृतिक हैं। अथर्व विचालीभाव का नाम है विचालीभाव डगमगाना तथा स्वरुपच्युति का रुप है, इसे न होने देना अथवा प्रायाश्चित द्वारा उससे बचाना अथर्व कर्म हैं अतः यह मन्त्र ग्राम आथर्वण है। ब्रह्मा के उपयोग के होने से ये मन्त्र 'ब्रह्म' भी कहे जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ की दृष्टि से संगृहीत मन्त्रों के आधार पर भेद के ये चार रुप हैं। ऋक् समुदाय होतृवेद, यजुः समुदाय, अध्वर्युवेद, सामयोनि, ऋक् समुदाय, उद्गातृवेद, ये त्रिविध रुप तथा प्रायाश्चित्तादि मन्त्र समुदाय ब्रह्मवेद है।।

यह व्यवस्था वेद की ही है कोई परवर्ती बाह्य व्यवस्था नहीं हैं। ऋग्वेद का यह मन्त्र द्रष्टव्य है -

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुयुष्वान्।
गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु।।
ब्रह्मात्वो वदति जातविद्यां।
यज्ञस्यमात्रां विमिभीत उत्वः।।

त्व निपात की सर्वनामता बताने के प्रसङ्ग में महर्षि यास्क ने इस ऋचा को उद्धृत करते हुए इसकी व्याख्या की है। निरुक्त (1.8) स्थ यह व्याख्या अतीव रमणीय है। इसका आरम्भ ही इति ऋत्विक् कर्मणां विनियोग माचष्टे से होता है - यह ऋचा ऋत्विकों के कर्मों का विनियोग कह रही है। अब एक-एक कर सभी के कर्म को बताया जा रहा है।

(1) ऋचामेकः पोषमास्ते पुपुष्वान् होता - एक ऋचाओं के पोष के पोषण में निरत रहता है जो होता है , विधिपूर्वक ऋचाओं के तत् कर्मानुष्ठान में विनियोग ऋचाओं का पोषण है।

(2) एक शक्करियों पर गायत्र-गान विषयीभूत साम का गायन करता है जो उद्गाता है।

(3) एक ऋत्विक् जातविद्या का प्रयोग करता है जो ब्रह्मा है, जातविद्या का अभिप्राय है कि यज्ञ मेरा निवारण हेतु किसी भी ऋत्विज् के दोष पर तत्सम्बन्धी विद्या का दोष निवारण नियान कहना।

(4) एक यज्ञ सम्बन्धित समस्त क्रिया-कलाप का यथोचित निर्वहण करता है जो अध्वर्यु है। (18)

विनियोगात्मक मुख्यता के आधार पर यज्ञ में वेदों की शीर्षस्थिति को बताने वाला यज्ञ विषयक मन्त्र इसकी व्याख्यात्मक पुष्टि करता है -

चत्वारिशृङ्गा त्रयो अस्य पादावेशीर्ष सप्त हस्तासो अस्य।
विद्यावद्धो वृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्या आविवेश।।

इसके चार श्रृङ्ग (सींग) हैं, तीन पाद हैं, दो शिर हैं, सात हस्त है, तीन स्थानों में बन्धा यह वृषभ है, निरन्तर शब्द करता है। ऐसा महान देव मृत्यों में आविष्ट है।

यह सामान्य शब्दार्थ है। यह महादेव यज्ञ है ऐसा भगवान यास्क का कथन है। निरुक्त के प्रथम परिशिष्ट अतिस्तुति अथवा सम्प्रत्यय में अथैव यज्ञस्य' (अतिस्तुतिः) क्रम में इसे उद्धृत कर व्याख्या करते है - चत्वारि श्रृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः - चत्वारि श्रृङ्गाणि इससे ये चार वेद ही निश्चित रुप से कहे गये है। स्पष्टतः यज्ञ में मुर्धन्यता वेद की ही बतायी गयी है। 'त्रयः अस्य पादाः इति सवनांनित्रिणी' द्वारा तीनों सवन प्रातः सवन, मध्याह्न सवन तथा तृतीय सवन यज्ञ के पाद बताये गये है, जिनसे गति करता है। वे शीर्षे - प्रायणीय- उदयनीये प्रायणीय तथा उदयनीय दो सिर है। सात छन्द ही सात हस्त है। त्रिधा वद्धः = त्रेधा बद्धः - मन्त्र ब्राह्मणकल्पैः - मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प से तीन प्रकार से बंधा हुआ

है। रोरवीति - रोरवणम् अस्य सवनक्रमेण - ऋग्भिः, यजुभिः, सामभिः, यदेनम् ऋग्भिः शंसन्ति, यजुभिः यजन्ति, सामभिः स्तुवन्ति - रोरवीती का अर्थ रोरवण है, भूयोभूयः शब्द करना रोरवण है। जो ऋचाओं से किये गये शस्त्र रुपात्मक शासन द्वारा, यजुर्मन्त्रों से यजन द्वारा तथा साम अर्थात् गीतियों द्वारा स्तुति रुप में है। 'महोदेवः इत्येष हि महान् वेदः यद् यज्ञः'- यही वह महादेव है जो यज्ञ है। मान् आविशेश - एव हि मनुष्यान् आविशति यजनाय - यह महादेव यज्ञ मरणधर्मा मनुष्यों में आवेश रुप में है यजन के लिए।

यज्ञ के लिए वेद है, यह कथन यज्ञ की श्रेष्ठता को तथा वेद की गौणता को बताता है। जैसे भ्रान्त विचारों को यह मन्त्र दूर करने में यथेष्ट है। यहाँ आये त्रिधाबद्ध के व्याख्यान में मन्त्र - ब्राह्मण और कल्प का लेना स्पष्ट करता है कि ब्राह्मण और कल्प भी मन्त्र समकालिक है। अतः ब्राह्मण का प्रमाण मन्त्रवत् है, यह निस्सन्दिग्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस कथन का बड़ा ही महत्व है। यास्क की यह व्याख्या गोपथ पूर्वभाग 2/16 कण्डिका के अनुसार है वहाँ भी 'त्रिधाबद्धः' इति मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणम् है।

वेद यज्ञ में विनियुक्त है अतः विनियोग का कर्ता होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा के तीन मन्त्रों से अतिरिक्त कुछ अन्य शेष न होने से वेद के पाँचवे भेद को कोई स्थान नहीं है। फलस्वरुप वेद चार ही है न तीन और न पाँच।

वेद विभाग में त्रित्व का अभाव

त्रयी त्रय जैसे नामों के आधार पर तीन वेद होने का भ्रम चिरकाल से प्रायः सर्वत्र प्रसिद्ध है। ऐसी भ्रमपूर्ण मान्यता वाले लोग अथर्ववेद को चिरकाल पश्चात् उद्भव हुआ मानकर चारवेद वाली मान्यता को पर्याप्त परवर्ती काल की मानते है।

अमरकोष का एक पद्य विचारणीय है। -

श्रुतिःस्त्री वेद आम्नाय स्त्रयी धर्मस्तु तविधिः।
स्त्रियामृक् सान यजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी।। 1.6.3

इसके तीन सूत्रवाक्य बनते है। (1) श्रुतिः स्त्री वेदः आम्नायः त्रयी, श्रुति, वेद, आम्नाय और त्रयी ये 4 नाम वेद के है, इनमें श्रुति स्त्रीलिङ्ग है। कुछ व्याख्याकार प्रथम वाक्य आम्नाय तक लेकर तीन नाम मानते है। वे त्रयी को परवर्ती वाक्य का प्रथम शब्द मानते हैं। (2) धर्मस्तु तविधिः, तत् सर्वनाम पूर्व प्रक्रान्त वेद को बताता है, तद्नुसार अर्थ है - धर्म उस (वेद) की विधि (कर्तव्योपदेश) का नाम है। (3) स्त्रियाम् - त्रयी - ऋक्, साम और यजु ये तीन वेद त्रयी कहलाते है।

यहाँ कोषकार त्रयी शब्द के वास्तविक अर्थ पर ध्यान न देने की चूक कर बैठे। त्रयी का अर्थ

पृथक् पृथक् तीन पूर्ण व्यक्ति नहीं है, अपितु वह एकीभूत समष्टि है जिसके तीन अवयव हो। भगवान पाणिनी ऐसे शब्दों के साधुत्वाख्यान में दो सूत्रों का विधान देते हैं -

(1) संख्याया अवयवेतयप् 15.2.421 (2) द्वित्रीभ्यां तयास्यायज्वा 5.2.43

(1) जहाँ संख्या पूर्णता को न बताकर अपने अवयवों को बता रही हो तो उस संख्या से उसके अवयव के अर्थ में तयप् प्रत्यय हो जाता है। जैसे पाँच अवयवों वाली कोई वस्तु हो तो पञ्चन् शब्द के साथ तयप् प्रत्यय का योग होगा तथा 'पञ्चतय' शब्द बनेगा, यह विशेषण शब्द है अतः विशेष्य के अनुसार इसका लिङ्ग होगा, जैसे पञ्चतयम्, पञ्चतयं नगरम् पाँच विभागों वाला नगर, पञ्चतयी नगरी, पाँच विभगों वाली नगरी, पञ्चतमः आलयः पाँच विभागों वाली नगरी वाला घर। एक से परार्ध तक सभी संख्याओं के साथ यह तयप् प्रत्यय लग सकता है। यदि द्वि और त्रि संख्या है तो तयप के स्थान पर अयच् आदेश कर चाहें तो एक दूसरा शब्द भी प्रयुक्त कर सकते है। यह विधान दूसरे सूत्र (43) का है। तदनुसार द्वितय तथा अयच् से द्वय शब्द बनते है। ऐसें ही त्रिलय तथा अयच् से त्रय शब्द मिलते हैं। यदि वेद को तीन अवयव वाला बताना अभीष्ट है तो त्रितयः वेदः, त्रयः वेदः होगा। वेद के पुल्लिङ्ग होने से। श्रुतिः है तो त्रितयी, त्रयी शब्द स्त्रीलिङ्ग होगें। नपुंसकलिङ्ग के साथ तो नपुंसकलिङ्ग होगें जैसे त्रितयम्, ब्रह्म, त्रयम् ब्रह्म, पूर्व में बताये हुए मनु के पद्य में त्रयम् ब्रह्म प्रयोग ही हैं। ब्रह्म नपुं. है, अर्थवेद ही है। इस प्रकार अमर सिंह का वेद अर्थ में 'इति वेदास्त्रयस्त्रयी' कहना ठीक नहीं है। उचित था 'इतिवेदास्त्रयः त्रयः' ये तीन वेद 'त्रयः' है। वेदों के साथ का त्रयः तीन संख्या बता रहा है त्रि शब्द के पु. में प्रथमा विभक्ति का बहुवचन का है। दूसरा त्रयः अय प्रत्यान्त पुं. एकवचन का पद है। सामान्यतः त्रयी वेद अर्थ में सूट का हो गया था। अर्थ है वेद, जिसके ऋग् आदि तीन अवयव है। कुछ अन्य प्रयोग प्रस्तुत हैं - (क) एतावान् वै सर्वो यज्ञः यावानेव त्रयः वेदः। (शत.5.5.7.10) समस्त भेदों सहित यज्ञ इतना ही है। जितना यह त्रय (ऋग, यजुः, सामात्मक) वेद है। (ख) स देवान् अब्रवीत् - एतेन यूयं त्रयेण वेदेन यज्ञं तनुध्वम्। ते देवाः अनेन त्रयेण यजमाना अय पाप्माननघ्नतप्रस्वर्गः लोकमजानन्। (जैमिनीय ब्रा. 1/358)

उन (प्रजापति) ने देवों को कहा - तुम इस त्र्यात्मक वेद से यज्ञ करो। उन देवों ने ऋग, यजुः, सामरुप व्यवयव वेद से यजन करते हुए पाप को नष्ट किया तथा स्वर्गलोक का प्रज्ञान प्राप्त किया। (ग) हन्तास्य त्रयस्य वेदस्य रसमाददा इति। (जैमिनीयोपनिषद् ब्रा. -1.1.1.2) प्रजापति ने विचार किया कि मैं इस त्रय वेद का रस प्राप्त करूँ।

(घ) भूर्भुवः स्वः स्त्रयो वेदोऽसि ब्रह्म प्रजां मे घुक्ष्व। (ऐतरेयारण्यक 5.3.2)

उक्थ ! तुम भूः भुवः स्व व्याहृति युक्त त्रयवेद हो, मुझे ब्रह्म तथा प्रजा से परिपूर्ण करो। आचार्य

सायण की व्याख्या यहाँ कुछ ठीक प्रतीत नहीं हो रही है। हे भूरादयस्त्रयोलोकाः यश्चवेदः वे त्रयः के कारण लोकाः का अध्याहार करते हैं। जबकि यहाँ लोकों का कोई प्रसङ्ग नहीं है। ये तीन व्याहृतियाँ तीनों वेदों का निचोड़ है जो सर्वत्र प्राथित है। गोपथ (पूर्व 1.6) में इस विषय का प्रतिपादन है। अतः व्याहृतियुक्तत्रयवेद अर्थ सङ्गत है।

ये त्रय के पुं. प्रयोग है, कुछ स्त्रीलिङ्ग प्रयोग भी प्रस्तुत है -

क) सैषा त्रयी विद्या यज्ञः। (शतपथ. 1.1.4.3) यह त्रयी विद्या यज्ञ है।

ख) त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि। (शतपथ 4.6.7.1)

ऋक्, यजुः तथा साम निश्चित ही त्रयी विद्या है। यदि हम स्वतन्त्र तीन विद्या कहना चाहते हो तो तिस्रः विद्याः कहना होगा। ये दोनों ही स्त्रीलिङ्ग पद त्रि तथा विद्या शब्दों के प्रथमा बहुवचन के हैं।

ग) एतावानु वै यज्ञो यावती एषा त्रयी विद्या है, एतया हि त्रय्या विद्यया यज्ञं तन्वते। (काण्व शतपथ 7.5.3.8)

इतना ही यज्ञ विस्तार है जितनी यह त्रयी विद्या है। त्रयी विद्या से यज्ञ का सम्पादन होता है। यहाँ तृतीया एकवचन में त्रय्या विद्यया पद है। त्रयी विद्या प्रथमा एकवचन में है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में केवल त्रयी शब्द वेद वाचक है -

अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय।

यमृषयस्त्रयी विदा विदुः ऋचः सामानि यजूंषि।। 1.2.1.69

यहाँ वेदवित् अर्थ में त्रयी वित् शब्द है। यद्यपि प्रसङ्ग यहाँ है वेद विद्या अर्थ के पक्ष में तथापि ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह रुढ़ि ले चुका था। लोक व्यवहार में भी यह वेद अर्थ में प्रसिद्ध हो चुका था। सुप्रसिद्ध 'शिवमहिम्नस्त्रोत' मे देखिये -

यहाँ त्रयी वेद के लिए ही आया है। इस दृष्टि से अमरपद्य को वाक्य योजना मे प्रथम वाक्य में त्रयी, द्वितीय वाक्य में 'धर्मस्तु तद् विधिः' पढ़ना ही उपयुक्त है। त्रयी धर्मस्तु तद् विधिः में अर्थ योजना अतीव क्लिष्ट कल्पनाजन्य है। 'इतिवेदास्त्रयः त्रयी' इस लोक प्रसिद्धि के अनुसार ही है। अब नपुं. लिङ्ग में प्रयोग देखते हैं -

क) पूर्वकथित मनुपथ्य के 'त्रयं ब्रह्म' का इस प्रकरण में निर्देश किया जा चुका है।

ख) ब्रह्मवैयदग्रे व्यभवत् - ऋक्, साम, यजुः तस्य वा एष रसो यद् यज्ञायज्ञियम्। (मैत्रान्यणी सं. 4.4.9)

ऋक्, साम और यजुः रुप यह (त्रय) ब्रह्म सृष्टि के आरम्भ में विभूति भाव में आया। उसी का रस यह यज्ञायज्ञिय साम है। यद्यपि यहाँ साक्षात् त्रयम् नहीं कहा गया है किन्तु ऋक्, यजुः, साम

जैसे तीनों को ब्रह्म कहना 'त्रयम्' के अध्याहार को बताना है। तस्य उसी को षष्ठी एकवचन द्वारा बताता है। तस्य-ब्राह्मण।

ग) **प्रत्यक्षमनुमानं च शाब्दं च विविधागमय।**

त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मसिद्धिममीप्सता।। (मनु 12.105)

धर्मशुद्धि की चाह वाले व्यक्ति को प्रत्यक्ष, अनुमान और विविध शास्त्रनिष्ठ, शाब्दिक प्रमाण इन तीनों प्रमाणों की भली भाँति परीक्षित समष्टि को अपनाना चाहिये। प्रमाण न.पु. है अतः उसकी समष्टि का वाचक त्रय भी नपुं. एकवचन में है। ऐसा ही एक प्रयोग मत्स्य पुराण में है-

दैवं पुरुषकारश्च बालश्च पुरुषोत्तम।

त्रयमेतत् मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम्।। (221.8)

भगवान् मत्स्य का मनु को उपदेश है कि- पुरुषश्रेष्ठ मनो! दैव (भाग्य), पुरुषार्थ (उद्योग) तथा काल तीनों का एक पिण्ड बना रुप ही फलदायक है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तीन वेद जैसी मान्यता कभी नहीं रही है। शास्त्र जाति रुप में वेद एक प्रक्रिया के निर्वाहणार्थ ऋत्विक सम्बन्ध से चार ये दो रुप ही सदैव रहे हैं, यही वास्तविकता है।

अनेक वेदसत्ता की अनेकता

यदि वास्तविकता को लेकर चलते है जो वस्तुतः व्यवहार्य है तो वेद एवं वैदिक ग्रन्थों में अब तक विचारित प्राण आदि की सत्ता को क्या माना जावे? न इन्हें औपचारिक कहा जा सकता है और न भ्रान्त ही।

यह जिज्ञासा महत्वपूर्ण है तथा वेद का विज्ञान के सनातन शास्त्र रुप वेदत्व बोध इसी के समाधान है।

पीठाचार्य, वेदपुराणस्मृति शोधपीठ
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर